# ठुमरी की भाषा एक अध्ययन

कु. शिल्पा मनोहरराव अढाऊ (महल्ले)
एम.ए., एम.फील (भारतीय संगीत)

**प्रस्तावना :–**

संगीत के अंतर्गत पद की संयोजना गेयकाव्य के रुप में होती है, अत: पद (शब्द) को गीत का दुसरा महत्वपूर्ण अंग माना गया है, भाषा व साहित्यमें वाक्य और काव्य की संरचना नियत अर्थवाले सार्थक पदो के संयोग से होती है। किसी भी काव्य में भाषा और विषय ये दो तत्व प्रमुख रुप से विद्यमान रहते है। अत: ठुमरी की पदरचना या काव्य का पर्यवेक्षन भाषा व विषय इन दोने दृष्टियो से करना समुचित होगा।

**ठुमरी की भाषा :–**

भाषा के दो प्रमुख भेद है। पहला 'बोली' और दुसरा 'भाषा' कहा जाता है। साधारण जनसमुदाय द्वारा बोली जाने वाली भाषा को 'भाषा' कहा जाता है, 'बोली' का साहीत्य लोकमानस से अद्भूद होकर साधारणत: लोकगीतो, कहावतों और लोककथाओ आदि के रुप में जनपरंपरा की धारा में प्रवाहित होता रहता है, और भाषा का साहित्य विद्वजनो द्वारा विविध रुपों में विरचित व सुगठित होकर समाज में प्रतिष्ठा अर्जित करता है।

'भाषा' के देशी रुप 'बोली' या लोकभाषा का संबंध सीधा जनमानस और त्रिशेषकर ग्राम–संस्कृति से होने के कारण उसकी प्रकृति सरल, स्वाभाविक व स्वच्छंद होती है। अत: इन गुणो के कारण 'भाषा' की तुलना में 'बोली' अधिक सरल व माधुर्य पर्ण होती है, मैथिल कोकिल विद्यापति ने भी अपने ग्रंथ कीर्तिलता में कहा ''देसिल बयना सब जन मिठ्ठा" अर्थात देशी वाणी (बोली) सब लोगो को मीठी लगती है।

जिस प्रकार स्वच्छंद गति सें बहने वाली प्राकृतिक जलधारा के प्रवाह में क्रमश: अन्य जलधाराओ का परस्पर संगम होता रहता है। उसी प्रकार भाषा नियमों के कठोर बंधनों से उन्मुक्त और स्वच्छंद प्रकृति की होने के कारण, जनप्रवाह कें अनुसार, लोकभाषाओं में भी परस्पर आदान–प्रदान चलता रहता हैं। फलत: एक बोली में अन्य बोलियों के शब्दो का व्यवहार भी प्राय: मिश्रित रुप में दिखाई पडता हैं। स्वर्गीय डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातांजनकर का कथन हैं, ''रागदारी चिजो कें संबध में यह बता देना आवश्यक होगा कि इसकी भाषा शैली हिन्दी साहित्य में एक स्वतंत्र भाग समझना होगा।" बहुत से शब्दों का मृदु रुपांतर करना पडता है, कभी–कभी पूर्वी बोली (अवधी, भोजपुरी, मगही आदि) ब्रजभाषा, मारवाडी, उर्दू, पंजाबी इन सबके मुहावरे (शब्द) चीओ (गेय रचनाओं) में एक साथ आए हुए दिखाई पडते है।"

अत्यंत प्राचीन काल सें ही लोकप्रचलित देशी संगीत की गान विधाओं में देशभाषाओं अथ्रात जनेबोलियो का उपयोग होता आया है, हरिवंशपुराण में राग साथ गाए जाने वाले गीतो में देशभाषा के प्रयोग का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

"चकुर्हसम्त्सश्च तर्थव रासं तद्देशभाषाकृतिवेशयुकता: ।
सहस्ततालं ललितं सलीलं वारांगना मंगलसंमुतग्य:।। ७।।"
हिरवंश, छालिकयक्रीडा)[८९]

प्राचीन भारत में देशभाषा या जनभाषा भाषाओं से प्राकृत भाषाओं का प्रचलन था। प्राकृत भाषाओं से मध्यप्रदेश के शौरसेन जनपद अर्थात ब्रज प्रदेश की प्राचीन जनबोली से विकसित शोरसेन प्राकृत के गेयपथ प्राचीन काल नें बहुत लकप्रिय थे, भारत में भी श्रृंगारप्रधान प्रासादिकी कें संदर्भ में बताते हुए ध्रुवा गीतो की रचना शौरसेनीप्राकृत में प्रश्न को कहा है। जैसे –

"भाषां तु शौरसेनी हि ध्रवाणां स्म्प्रयोजपेतू।"
(भरत, नाट्यशास्त्र, द्वातिशोध्याय, श्लोक नं ३८३)

प्राचीन रास व चर्चरी गीतो की भाषा भी मुख्यत: शौरसेनी प्राकृत ही थी। प्राकृत भाषाओं का संबंध मूलत: प्राचीन जनभाषाओं से था। बहुत समय तक तो वे स्वभावत: जनसाधारण के लिए सरल व सुबोध बनी रही।

किंतू बाद में व्याकरण के नियमो से अधिक बॅश जाने पर वे धीरे धीरे जनता में दुर्बोध होती गई, और उनका स्थान अपभ्रंश भाषाओं ने ले लिया।

पतंजली नें अशुद्ध और भतृहरि नें संस्काररहित शब्दो के अप्रभ्रंश कहा है।

"एकस्थैव शब्दस्य न बहपोऽपभ्रंशा:। तद् गौरिव्यस्थ गावी, गोणी
गोवा गोपो तालिके थेयमाघो उपभ्रंशा।।"

(पतंजली, मध्यभाष्य)

"शब्द संस्कारहीनो यो गौरिति प्रत्युयुक्षिते।
तम पभ्रंशमिच्छान्ति विशिष्टार्थ निवेशितम् ।।४८।।

(मतृहरि वाक्यपदीयन काण्ड)

अपभ्रंश भाषाओं में महाराष्ट्री और शौरसेनी प्रमुख है और इन दोनो में इतना साम्य है कि कुछ लोग उन्हे एक ही अपभ्रंश कि दोन शाखाएँ तक मानते है। बाहरवी शताब्दी तक अपभ्रंश भाषाओं ने मी क्लिष्ट वदुर्बोध ही जानेपर उनसे विकसीत जनभाषाओं के काव्यों व गेयपदो की लोकप्रियता बढती गई। वर्तमान हिंदी की 'ब्रजभाषा' का स्वरुप भी व्याकरणादि है, इसलिए पिछली शताब्दी के प्रसिद्ध संगीत ग्रंथकार कॅप्टन विल्र्डने भी ठुमरी को 'इम्प्योर डायलेक्ट ऑफ ब्रजभाषा' अर्थात अशुद्ध ब्रजभाषा का गीत बताया है। आज ठुमरी रचनाओं की भाषा का ज्यो व्यापक स्वरुप हमारे सामने है, उसे साधारणत: ब्रजभाषा के साथ–साथ खडी, अवधी और कही–कही किंचित उर्दू का प्रभाव भी परिलक्षित होता है, यहा ठुमरी की पदरचना के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है, जिनमें हिंदी की इन बोलियों के दर्शन होते है।

ब्रजभाषा में विरचित एक ठुमरी इस प्रकार है।

**१. ठुमरी :–**

स्थायी : बॉकी छवि दिखलाए सॉवरो, मेरो मन ठगौरी।
अंतरा : मोहे कमान, बान, पालकन, बेधत प्राण हियौरी।।

वाजिदअली शाह 'अख्तर'कृत निम्नलिखित ठुमरी की भाषा भी प्रधानता 'ब्रजभाषा है।'

**२. ठुमरी राग काफी (ताल अद्धा) :–**

स्थायी : मोरी आली, मै पनियॉ कैसे जाऊंरी ।। टेक ।।
सखीरी, नागर नटखट मुकुट वारी,
मोसों, करण, ढिढाई बंसीवट जमुनातट
पनियॉ कैसे जाऊरी।।

अंतरा :उमक उमक और उचल उचल भॉके 'अखतर'
तट पनघट बंसीबुंट जमुना तट
पनियॉ कैसे जाऊरी।।

'कदरपिया' की निम्नलिखित ठुमरी पर खडी बोली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पडता है।

**३. ठुमरी :–**

स्थायी : एरी गुडयॉ मैं कैसे भेजू पाणी ।टेक।।
कदर पिया को कैसे भेजू पाती।।

टंतरा : एक तो पापिन रैन अंधेरी, दूजे सूनी सेज नागिन।
तीजे मेरा बाला जीवन, हाय स जाती।।

निम्नलिखित कुछ प्रसिद्ध ठुमरियों में पुरबी हिंदी की अवधी बोली के विभिन्न रूपों के दर्शन होते है।

**४. छुमरी पीलू :–**

स्थायी : मोरी अखियों ने बैर किया ।टेक।।
देखो, मोसे, 'कदर पिया'।।

अंतरा : आप ठरत और मन का फॅसावत
इनही कारण घायल होत जिया।।

**५. ठुमरी भैरवी :–**

स्थायी : बारे बलम फुलगेदवा न मारो,
लगत करेजवा में चोट।।

अंतरा : सैयॉ निरमोहिया दरदिया न जाने,
रखात पलकिया की ओट।।

**६. श्राम कलिंगडो, ठुमरी, आडों तितालो :–**

स्थायी : अलबेले चंपा चीर में।।

टंतरा : बिजली सी चमके पियारी जीरो।
पियरी घटा की मीर में

ठुमरी गीतो में ब्रजभाषा के साथ–साथ साधारणत: हिंदी भाषा के अंतर्गत आनेवाली अन्य जनबोलियों का उपयोग होना नितांत स्वाभाविक या ठुमरी गीतो की रचना के लिए सामान्यत: हिंदी भाषा की जनबोलियो का उपयोग होता चला आया और आगे चलकर प्रचार में वैसा ही रुढ भी हो गया। इसलिए वर्तमान ठुमरी रचयिता व ठुमरी गायक किसी भी प्रदेश के क्यो न हो, अपने ठुमरी गान में

वे सदैव हिंदी की ही जनबोलियों का प्रयोग करणे की चेष्टा करते है।

**निष्कर्ष :–**

ठुमरी की उत्पाती का रहस्य अभी तक अज्ञात सा ही है। यो कहने को तो कहा जाता है कि अवध के नवाबो के दरबार में ठुमरी का उद्‌गम हुआ था। परंतु उक्त दरबार में जो ठुमरी गाई जाती थी। उसका स्वरूप इतना पौढ था, कि उसके आधार पर यह कदापि नही कहा जा सकता कि उस समय से ठुमरी की नवीन पारिपाटी प्रचलित हुई होगी, जिसे हम आरंभ मान रहे है, वह शुरू में ही इतना प्रौढ रूप कैसे प्राप्त कर सकता है ? अत: यही कहना पडता कि यह पारिपाटी जनता में बहुत पहले से चली आ रही थी। यह बात दुसरी है कि इस परिपाटी की इससे पहले राज दरबार में गाये जाने का सौभाग्य नही मिला था। जब ठुमरी को यह सम्मान प्राप्त हुआ तब समाज में उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ गई।

**संदर्भ ग्रंथ संकेत :–**

१. ठुमरी की उत्पत्ती विकास और शैलियॉं (शत्रृघ्न शुक्ला)
२. तनसेन कृत संगीतसार (संगीत रत्नाकर के मत) २४०
३. “देसिल बनयां सब जन मिठ्ठा” (कोर्तिकला)
४. चक्रर्हसत्यस्च्य तर्थव रासं तद्‌देराभाषाक्रतिवेशयुक्ता। सहस्त्रतालं ललितं सलीलं वारांगना मंगल संभृतांग्य।।७।। **(हिरवंश, छालिकयक्रीडा)**[८९]
५. भाषा तु शौरसेनी हि ब्रवाणां सम्प्रयोजयेत्। (भरत, नाट्यशास्त्र द्वात्रिशोध्याय, श्लोक सं ३८३)

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www.aiirjournal.com